(१) अपवर्ग

"अप" उपसर्ग के साथ "वृजी वर्जने" धातु से "घञ्" प्रत्यय द्वारा निष्पन्न "अपवर्ग" शब्द धात्वर्थ की दृष्टि से अपवर्जन या त्याग का अर्थ देता है जो शास्त्रों में मोक्षवाचक हो गया है। (तदत्यन्तविमोक्षोपवर्ग:। न्यायसूत्र १/१/१२) अर्थात् दु:ख का अत्यन्त निरसन अपवर्ग है।

(२) उपनिषद्

"उप" तथा "नि" उपसर्गों के साथ "षद्" धातु से "क्विप्" प्रत्यय द्वारा निष्पन्न उपनिषद् शब्द धर्म तथा एकान्त के अर्थ में कोशाभिमत है। परन्तु विद्याप्राप्ति का अर्थ विशेष पाया जाता है। जिसकी परम्परा रही है – तद्ध स उपनिषसाद ज्योति:। (जै.उप ३/३/९) अर्थात् उसने उस ज्योति का ज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार विद्या तथा शास्त्रीय रहस्य के अर्थों में यह शब्द प्रचलित है। वाणी ही उपनिषद् है और सभी वाणी की उपनिषद् ब्रह्मविद्या है। जो कुछ भी विद्या द्वारा किया जाता है वह श्रद्धा तथा उपनिषद् से अधिक शक्तियुक्त बनता है। यहाँ रहस्य, विद्या तथा विधि अर्थों में प्रयोग हैं – तद् ब्रह्मोपनिषद् परम्। तद् वेदोगुह्योपनिषत्सु गूढम्। (श्वे.उप) अर्थात् ब्रह्म परम उपनिषद् (रहस्य) है। वह वेदों के रहस्यभूत उपनिषदों में गूढ है।

(३) कैवल्य

केवल का भाव कैवल्य या केवलत्व है। मोक्षशास्त्र में यह निरपेक्ष अवस्था का नाम है। परिज्ञानपूर्वक वासनाओं का त्याग उत्तम कहा गया है क्योंकि उस अवस्था में आत्मा का स्वरूप सत्तामात्र रहता है, अत: वही वासनामुक्त स्वरूपस्थिति कैवल्यपद है। जब समाधिस्थ पुरुष सभी भूतों को पृथक् नहीं देखता और परमात्मा के साथ एकीभाव प्राप्त करता है तब सर्व-

सम्पर्करहित होकर वह केवल हो जाता है जो आत्मा का कैवल्य है । (यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति । एकीभूत: परेणासौ तदा भवति केवल: ॥ अन्नपूर्णोपनिषद् ५/८०)

(४) धर्म-अधर्म

शास्त्र द्वारा विहित को धर्म तथा प्रतिषिद्ध को अधर्म कहा गया है । पुण्य तथा अपुण्य को क्रमश: धर्म तथा अधर्म कहा जाता है। नैयायिक तथा वैशेषिकों के अनुसार शास्त्र द्वारा विहित कर्म से साध्य धर्म तथा निषिद्ध कर्म से साध्य अधर्म आत्मा के गुण हैं परन्तु कुमारिलमीमांसा के अनुसार उन कर्मों को ही धर्माधर्मता या पुण्यपाप कहा जाता है । अत: लौकिक (अभ्युदय) एवं पारलौकिक (नि:श्रेयस्) सुख का कारण धर्म है ।

(५) निदिध्यासन

"नि" + उपसर्गक ध्यै धातु से सन् प्रत्यय तथा भाव में ल्युट् करने पर निदिध्यासन शब्द बनता है। "विजातीयदेहादिप्रत्ययरहिताद्वितीयवस्तुसजातीयप्रत्ययप्रवाहो निदिध्यासनम्"। (वे.सा. पृ. २४४) अर्थात् शरीर से लेकर बुद्धिपर्यन्त समस्त जड़ पदार्थ विषय करने वाली विजातीय प्रतीतियों से पृथक् होकर अद्वितीय ब्रह्म की सजातीय प्रतीतियों को प्रवाहित करने को निदिध्यासन कहा जाता है। विद्यारण्य ने इसे निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया है – (ताभ्यां निर्विचिकित्सेऽर्थे चेतस: स्थापितस्य यत् । एकतानत्वमेतद्धि निदिध्यासनमुच्यते ॥ पञ्चदशी १/५४) अर्थात् श्रवण और मनन के द्वारा जब आत्मा का स्वरूप निश्चित हो जाता है, उसमें किसी प्रकार का संशय नहीं रह जाता, तब चित्त को उस आत्मस्वरूप में लगाकर उसकी एकतान-एकाकार जो वृत्ति अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित की जाती है, उस प्रवहमान आत्मविषयक चित्तवृत्ति को ही निदिध्यासन कहा जाता है ।

(६) भाष्य

जिस ग्रन्थ में सूत्र में आये हुए पदों से सूत्रार्थ का वर्णन किया जाता है तथा ग्रन्थकार अपने द्वारा पद प्रस्तुत कर उनका वर्णन करता है, उस ग्रन्थ को भाष्य के जानकार लोग भाष्य कहते है। (सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदं सूत्रानुसारिभि:। स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदु: ॥)

(७) मनन

मननं तु श्रुतस्याद्वितीयवस्तुनो वेदान्तानुगुणयुक्तिभिरनवरतमनुचिन्तनम्। वे.सा. पृ.२४३) अर्थात् छ: प्रकार के लिङ्गों के द्वारा समस्त वेदान्तवाक्यों का अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्य है, इस निश्चय रूप श्रवण के बाद वेदान्त के अनुकुल तर्कों से अद्वितीय ब्रह्म का सतत चिन्तन करना ही मनन कहलाता है।

(८) योग

योग शब्द युज् धातु में घञ् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। "युज् समाधौ" धातु दिवादिगणीय (आत्मनेपदी) के अनुसार योगशब्द का अभीष्ट अर्थ समाधि अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध स्वीकार किया गया है। (योग: समाधि:, योगश्चितवृत्तिनिरोध:। यो.सू. १/१-२)

(९) वेदान्त

(क) "वेदानाम् अन्त: इति वेदान्त:" इस व्याख्या के अनुसार वेदों के अन्तिमभाग अर्थात् उपनिषद् ही वेदान्त है। अथवा उपनिषदों को प्रमाण स्वरूप मानकर चलने वाला शास्त्र वेदान्त कहलाता है। ("वेदान्तो नामोपनिषत्प्रामाणं। वे.सा. पृ. ११६)

(ख) वेदान्त, वह ज्ञान है जो आप्तजनों - वैदिक ऋषियों के साक्षात् अनुभव से प्राप्त है । अनुभव प्रमाण से सिद्ध जगत् के परम कारण ब्रह्म अथवा आत्मतत्त्व सम्बन्धी वेदों अथवा उपनिषदों में निहित ज्ञान ही वेदान्त है ।

(१०) सूत्र

अल्प अक्षरों में अधिक अर्थ बताने की क्षमता, सन्देह रहित विषय की प्रस्तुति, सारतम प्रक्रिया सरणी, आवश्यक सभी जगहों पर प्रवृत्त होने की क्षमता, दोषों का अभाव होना और अनिन्दनीय रहना ये सभी सूत्र के छ: लक्षण हैं । (अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारद्विश्वतोमुखम् । अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदु: ॥)

(११) स्वर्ग

जो दु:ख से रहित हो, जिसका कभी नाश न हो, इच्छा मात्र से जिसकी प्राप्ति हो जाये वही सुख स्वर्ग है । (यन्न दु:खेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्व:पदास्पदम् ॥